# संस्कृत वाङ्मय में राष्ट्रवाद एवं शान्ति का चिन्तन

*डॉ. यशस्पति झा

संस्कृत वाङ्मय में विविध विधाओं में विविध विद्याक्षेत्रों की ज्ञानराशि संग्रहीत एवं संरक्षित है। इसी क्रम में यह विचारणीय है कि संस्कृत साहित्य में जहाँ एक ओर युद्ध की परिकल्पना की गई है वहीं दूसरी ओर शान्ति की भी जमकर स्थापना की गई है।

यद्यपि इन दोनों शब्दों में अत्यन्त गहरा विरोध जैसा दिखाई देता है, लेकिन ये दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं, न कि विरोधी युद्ध और शान्ति एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जितनी आवश्यक शान्ति है उतना ही आवश्यक युद्ध भी है। जिस प्रकार शान्ति बनाना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है उसी प्रकार युद्ध करना भी कर्तव्य है।

संस्कृत वाङ्मय में युद्ध और शान्ति के समन्वय के रूप में गीता का दूसरा अध्याय अवलोकनीय है- इस अध्याय में एक ओर जहाँ अर्जुन को युद्ध के लिए प्रेरित किया जाता है, वहीं दूसरी ओर स्थितप्रज्ञ की बात कर शान्ति की स्थापना की गई है। इसप्रकार संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि संस्कृत वाङ्मय में युद्ध और शान्ति में पर्याप्त समन्वय देखा जा सकता है।

इसी सन्दर्भ में सम्राट् अशोक का दृष्टान्त सर्वविदित है कि उसने घोर हिंसक के उपरान्त सदैव के लिए शान्तिपूर्ण दृढ़ संकल्प कर लिया था। बस यहीं से शुरू युद्ध होता है युद्ध और शान्ति का समन्वय ।

संस्कृत वाङ्मय में अहिंसक विरोध की बात आती है जिसका तात्पर्य यह है कि विरोध भी और अहिंसा भी। दूसरे शब्दों में कहा जाये तो युद्ध भी और शान्ति भी । आज हमें इस अहिंसापूर्ण विरोध के प्रशिक्षण की आवश्यकता है, क्योंकि हिंसक युद्धों के प्रशिक्षण पर तो राष्ट्र बहुत व्यय कर रहा है, लेकिन संस्कृत वाङ्मय कहता है कि अहिंसा के प्रशिक्षण पर उससे भी अधिक व्यय किया जाना चाहिए।

युद्ध और शान्ति की देश, काल, परिस्थिति के अनुसार प्रेरणा संस्कृत वाङ्मय में पर्याप्त रूप से देखी जा सकतीहै।

विहाय शान्तिं नृप धाम तत्पुनः प्रसीद संपेहि वधाय विद्विषाम्।'

अर्थात् हे राजन! शान्ति को छोड़कर शत्रुबंध के लिए उस क्षात्र तेज को पुनः युद्ध और शान्ति के समन्वय का एक अच्छा

उदाहरण देखिये

धारण कर लीजिए।

**अरिषु हि विजयार्थिनः क्षितांशाः ।**

**विदधति सोपधि सन्धि दूषणानि ।। "**

अर्थात् विजय को चाहने वाले राष्ट्र शत्रु के साथ की गई सन्धि को किसी भी बहाने से तोड़ देते हैं। इसलिए इन सभी नीति विशेषज्ञों की नीति का अनुसरण करते हुए आत्मरक्षा तथा विश्वशान्ति स्थापना के लिए शान्ति नीति के साथ-साथ दण्डनीति का भी प्रयोग करना चाहिए।

इसप्रकार महाभारत में कहा गया है कि जो सदैव क्षमा धारण करता है नीच व्यक्ति उसका अपमान कर देते हैं, अतः जो प्राप्त अपमान का स्वतेज से परिमार्जन नहीं करता है उसके निस्तेज महान पौरूष का क्या अर्थ है? जैसा कि

**क्षममाणं नृपं नित्यं नीचः परिभवेज्जनः ।**

**हस्तियन्ता गजस्येव शिर एवारुरुक्षति ।। '**

उपर्युक्त उद्धरण से यह स्पष्ट होता है कि जितनी मात्रा में युद्ध की महत्ता है उतनी मात्रा में ही शान्ति की भी महत्ता है; दोनों की बराबर भूमिका है, अतः इसी नीति को दृष्टिगत रखते हुए हमें वर्तमान राष्ट्रीय नीति का संधारण करना चाहिए।

श्रीमद्भगवद्गीता में द्वितीय अध्याय के प्रारम्भ में अर्जुन अपने बन्धु बान्धवों को प्रतिपक्ष की ओर देखकर भगवान श्री कृष्ण से कहते हैं कि इस अवस्था में मैं युद्ध को त्यागकर भिक्षा वृत्ति को श्रेयस्कर समझता हूँ, तब श्री कृष्ण कहते हैं कि निषिद्ध हिंसा के आधार पर आज अर्जुन कुमार्ग पर चलने को उद्यत है, हो सकता है भविष्य में कोई भी शासक अन्याय से थोपे हुए युद्ध से इसी तरह विमुख हो सकता है; तब दण्डनीति पर आधारित समस्त समाज व्यवस्था (शान्ति की व्यवस्था) उच्छिन्न हो जायेगी। अर्जुन पाण्डवों को कमजोर करने के साथ एक गलत उदाहरण भी प्रस्तुत कर रहे हैं। अतः अर्जुन के शोक एवं मोहरूपी अज्ञान को ध्वंस करने हेतु श्री कृष्ण ने उन्हें तत्त्वज्ञान का उपदेश दिया।

श्रीकृष्ण का उपदेश समर और शान्ति का समुचित और सन्तुलित उदाहरण पेश करता है। श्रीकृष्ण कहते हैं कि समाज एवं राष्ट्र की समुचित व्यवस्था या शान्ति अपेक्षित है तो यह समुपस्थित समर आवश्यक है। इनके उपदेश में कर्मयोग (युद्ध न्यानपारिजातः

संस्कृत वाङ्मय में युद्ध और शांति और ज्ञानयोग (शांति) का सुन्दर समन्वय हुआ है, इसप्रकार गीता जैसे अनेक संस्कृत ग्रन्थों में भी युद्ध और शान्ति के समन्वय को बड़ी बखूबी से चित्रित किया गया है। युद्ध की प्रेरणा देते हुए गीता में कहा

गया है कि विधाता ने युद्ध में जीत या हार का विधान किया है वही क्षत्रियों का सनातन धर्म है, कायरता की सदैव निन्दा होती है। कीर्ति को ही जीवन माना जाता है- कीर्तिर्यस्य स जीवति कीर्तिहीन तो मरा हुआ है। यही महाभारत में स्पष्ट है।

**तत्रैव निहतो राजन् यदैव निरपत्रपः ।**

**निन्दितश्च महाराज! पृथिव्याः सर्वराजभिः ।।'**

जहाँ एक ओर कायरता को निन्दनीय बताया गया है वहीं दूसरी ओर सभी प्राणियों को मित्र की चक्षु से देखने की बात कहीं गई है। इससे यह सिद्ध है कि आवश्यक होने पर युद्ध भी अपेक्षित है और अनावश्यक होने पर सभी प्राणी एक-दूसरे के मित्र हैं।

जहाँ एक ओर युद्ध को कर्तव्य के रूप में बताया गया है वहीं दूसरी ओर दूसरे की सुख-दुख में सहायता करना, उन्हें संरक्षण प्रदान करना भी परम कर्तव्य के रूप में दिखाया गया है।" तथा दूसरी ओर क्षात्रधर्म की दृष्टि से युद्ध को अर्जुन का स्वधर्म बताकर उसके त्याग को अनुचित बताया गया है

**स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि ।**

**धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते।।'**

अर्थात् अपने क्षात्रधर्म को देखकर भी तू भय करने योग्य नहीं है अर्थात् तुझे भय नहीं करना चाहिए; क्योंकि क्षत्रिय के लिए धर्मयुक्त युद्ध से बढ़कर दूसरा कोई कल्याणकारी कर्तव्य नहीं है। क्षत्रिय को वीरगति प्राप्त होना शोक का विषय नहीं है, धर्मयुद्ध क्षत्रिय के लिए श्रेयस्कर धर्म है; यही महाभारत कहा गया है

**न यज्ञैर्दक्षिणावद्भिर्न तपोभिर्न विद्यया ।**

**तथा स्वर्गमुपायान्ति यथा शूरास्तनुत्यजः ।।'**

क्षत्रिय को युद्ध में बलिदान होने से जो गति मिलती है वह दक्षिणा यज्ञ और अनेक तप कर्मों से भी नहीं मिलती। धर्मशास्त्र में युद्ध और प्रजापालन (शान्ति) राजा का धर्म कहा गया है

**युद्धं स्वधर्मो नृपतेः प्रजानां परिपालनम्।**

यहाँ युद्ध को धर्म इसलिए कहा गया है कि जो धर्मशास्त्र में छह आततायी कहे गये हैं उनका नाश करना अवश्यम्भावी होता है। वशिष्ठ स्मृति में छह आततायी इस प्रकार कहे गये हैं

अनिदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिघनापहः । क्षेत्रदारहरश्चैव षट्वैते आतयायिनः।।"

आग लगाने वाला, जहर देने वाला, शस्त्र हाथ में लिया हुआ, धन का अपहरण करने वाला, खेत और स्त्री का अपहरण करने वाला आततायी कहलाता है। इन्हें बिना विचारे मार देना चाहिए।

ऐसे ही विचार मनुस्मृति में व्यक्त किये गये हैं

**गुरुं वा बालवृद्धी वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम्।**

**आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्।।'**

इसलिए आततायी के वध हेतु क्षत्रिय को क्षात्र धर्म का स्मरण करते हुए संगम से कदापि विमुख नहीं होना चाहिए

न निवर्तेत संग्रामात् क्षात्रं धर्ममनुस्मरन्

संस्कृत वाङ्मय में युद्ध को सतत पुण्ययुक्त और स्वर्गप्राप्ति में परम सहायक बताते हुए कोटि तपों के संचय स्वरूप को वर्णित किया गया है। अग्निपुराण में भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये गये हैं

स्वर्गप्राप्ति के लिए प्रयत्न करने वाले ब्राह्मण कोटि-कोटि यज्ञ कराने से एवं कठिन तपस्या से जिस गति को प्राप्त नहीं कर सकते हैं उस गति को युद्ध भूमि में प्राण त्याग करने वाला वीर तत्काल ही प्राप्त कर लेता है। युद्ध में वीरतापूर्वक और स्वधर्म का पालन करते हुए मर जाना स्वर्गप्राप्ति का

समुचित मार्ग है ऐसी विचारधारा संस्कृत वाङ्मय में पग-पग पर मिलती है। एक

उदाहरण गीता का देखिये जो बहुत प्रसिद्ध है

**हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।**

**तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ।। 2**

उपर्युक्त श्लोक में श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते हैं कि या तो तू युद्ध में मारा जाकर स्वर्ग को प्राप्त करेगा अन्यथा जीतकर पृथ्वी का राज भोगेगा। इसकारण हे अर्जुन! तू युद्ध के लिए निश्चय करके खड़ा हो जा। संस्कृत वाङ्मय में विश्वशान्ति -

विश्वशान्ति का एक लम्बा इतिहास है। भारतीय मान्यताओं में विश्वशांति के लिए वसुधैव कुटुम्बकम्" और यत्र विश्वं भवत्येकनीडम् जैसी भावनाओं को प्रसारित किया गया है। इसके साथ ही संस्कृत वाङ्मय में योग शिक्षा के माध्यम से भी शान्ति की स्थापना का प्रयास किया गया है।

संस्कृत वाङ्मय में युद्ध और शांति शान्ति शब्द संस्कृत की शम् धातु में किन प्रत्यय लगाने से बना है जिसका अर्थ है- शान्त, अभाव से मुक्ति, निश्चिन्तता का भाव होना। संस्कृत वाङ्मय में शान्ति के

लिए समस्त प्राणी मात्र के लिए ऐसी कामना की गई है सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः । सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुखभाग्भवेत्।

शान्ति शिक्षा को परिभाषित करते हुए आधुनिक विचारक कहते हैं- The Peace Education is an attepmt to respond to problems of conflict and violence on scales ranging from the global and national to the local and personal. It is about exploring ways of creating more just and sustainable futures. (शान्ति शिक्षा व्यक्तिगत, स्थानीय राष्ट्रिय एवं वैश्विक स्तर पर फैल रहे विवादों और समस्याओं तथा हिंसा के विरुद्ध प्रतिकार का प्रयास है।)

यजुर्वेद में शांति मंत्र लिखा है-

**द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः "। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।**

यहां शान्ति शब्द तीन बार बोला जाता है। इसका वास्तविक तात्पर्य तो वैदिक ऋषि ही जानते होंगे, लेकिन तीन बार बोलने के कुछ अर्थ इसप्रकार हो सकते हैं

1. त्रिविध ताप के निवारण हेतु
2. पृथ्वी, अन्तरिक्ष और आकाश की शान्ति हेतु
3. संस्कृत में तीन बहुवचन के अन्तर्गत आता है अतः अतिशयाधिक्य के कारण तीन बार इनका उच्चारण किया गया हो।

हिंसा कायिक, वाचिक और मानसिक के भेद से तीन प्रकार की मानी गई है, अतः इन तीनों के निवारणार्थ भी शान्ति शब्द का तीन बार उच्चारण किया गया हो।

वेदों के अनुसार शान्ति समस्त भौतिक एवं जैविक तत्वों में सन्तुलन का नाम है। तभी तो वेदों में ऋषियों द्वारा जो मंत्र बनाये गये उनमें शान्ति को आकाश, पृथ्वी, अन्तरिक्ष, वनस्पति आदि से जोड़ा है।

आज विश्व में एक राष्ट्र को दूसरे राष्ट्र से जितना अधिक खतरा है उतना शायद किसी से हो, क्योंकि आज प्रायः हर राष्ट्र ने इतने घातक हथियार बना लिये हैं कि उससे सम्पूर्ण पृथ्वी को एक बार नहीं, कई बार मिटाया जा सकता है। अतः आज के समय में शान्ति की इतनी अधिक आवश्यकता है जितनी कि पूर्व में कभी नहीं रही, क्योंकि आज चारों तरफ भय बहुत गहरे रूप से व्याप्त हो गया है।

इसी भय के फलस्वरूप शक्तिहीन राष्ट्र को भी अपनी संरक्षा हेतु नवीनतम युद्धसामग्री का निर्माण करना आवश्यक हो गया है, लेकिन देखा जाये तो इसी प्रकार युद्धसामग्री का निर्माण होता रहा तो हिंसा बडा ही विध्वंसक रूप धारण कर

सकती ऐसे समय में शान्ति की स्थापना करना भी आवश्यक हो गया है। इसप्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि आधुनिक समय में युद्धऔर

शान्ति दोनों के ही पर्याप्त समन्वय की आवश्यकता है और जिस समष्टि या राष्ट्र में इस प्रकार का समन्वय होगा वही समष्टि या राष्ट्र लोकोत्तर होगा। जैसा कि संस्कृत साहित्य के एक प्रसिद्ध श्लोक में कहा गया है

**वज्रादपि कठोराणि कुसुमादपि।**

**लोकोत्तराणां चेतांसि को न विज्ञातुमर्हति।।' 15**

की कटुता और अर्थात् जिसप्रकार महान पुरुष का मन वज्र से भी कठोर और फूल से भी ध्येय युद्ध कोमल होता है उसी प्रकार लोकोत्तर समष्टि या राष्ट्र का शान्ति की मृदुता का समन्वय ही होता है।

दरअसल विश्व एक समग्र है और मनुष्य उसकी एक ईकाई है। अतः प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य बनता है कि वह स्वयं नैतिक एवं आध्यात्मिक बने और इसकी पहल करने में स्वयं आगे आये-तभी सम्पूर्ण विश्व में शान्ति संभव है। सम्पूर्ण विश्व में शान्ति तब आयेगी जब व्यक्ति के हृदय में ही शान्ति उत्पन्न हो इसके लिए अपने मन (मनांसि) को पवित्र एवं निर्दोष करना होगा। एक बार यदि मन में दुर्विचार उत्पन्न हो गये तो वे कभी न कभी, किसी न किसी रूप में मार्गान्तरीकरण होकर समाज और राष्ट्र में विष अवश्य ही फैलायेंगे; अतः दुर्भावनाओं को मन से ही समूल नष्ट करने का प्रयास किया जाना चाहिए।

***व्याख्याता**
**व्याकरण**
राजकीय शास्त्री संस्कृत महाविद्यालय
अलवर (राज.)

**सन्दर्भ**

1. किरातार्जुनीयम् 1/42
2. किरातार्जुनीयम् 1/45 महाभारत, शान्ति पर्व, 56.40
3. उद्योगपर्व, 673.25
4. मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मिषा समीक्षा 36.18
5. पुमान् पुमांस परि पातु विष्वतः । ऋग्वेद, 6.75.14

6. गीता, 2/31
7. महाभारत, 11.9.8
8. वशिष्ठ स्मृति-3.15
9. मनुस्मृति, 8.350
10. मनुस्मृति 7.87
11. मनुस्मृति, 7.87
12. संस्कृत वाङ्मय में युद्ध और शांति
13. पंचतंत्र, 5/305
14. शुक्ल यजुर्वेद
15. उत्तररामचरित, 2.7 36.17
16. संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्। देवा भागं यथापूर्वे संजानाना उपासते।
17. समानो मंत्रः समितिः समानी, समानं मनः सह चित्तमेषाम्।। ऋग्वेद 10.191.2 /33